कविवर-श्रीहेमरत्नप्रणीतो

भावप्रदीपः

[प्रश्नोत्तरकाव्यम्]

म. विनयसागर

प्रश्नोत्तर काव्यों, प्रहेलिकाओं और समस्यापूर्ति के माध्यम से विद्वज्जन शताब्दियों से साहित्यिक मनोरंजन करते आए हैं । प्रश्नोत्तर काव्य आदि चित्रकाव्य के अन्तर्गत माने जाते हैं। अलङ्कार-शास्त्रियों ने शब्दालङ्कार के अन्तर्गत ही चित्रकाव्यों की गणना की है । चित्रगत प्रश्नोत्तरादि काव्यों का विस्तृत वर्णन हमें केवल धर्मदास रचित विदग्धमुखमण्डन में प्राप्त होता है, जिसमें ६९ प्रश्नकाव्यों का भेद-प्रभेदों के साथ वर्णन प्राप्त है । उसको काव्यरूप प्रदान करने वाले कवियों में जिनवल्लभसूरि (१२वीं) का मूर्धन्य स्थान माना जाता है । उनके ग्रन्थ का नाम 'प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतक काव्य' है । सम्भवतः इसी चित्रकाव्य-परम्परा में अथवा जिनवल्लभ की परम्परा में हेमरत्नप्रणीत भावप्रदीप ग्रन्थ प्राप्त होता है ।

कवि हेमरत्न पूर्णिमागच्छीय थे । हालांकि भावप्रदीप में गच्छ का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु अन्य साधनों से ज्ञात होता है । हेमरत्न द्वारा स्वलिखित प्रति में आचार्य का नाम देवतिलकसूरि लिखा है । (पद्य ११८) । किन्तु अन्य प्रति में आचार्य का नाम ज्ञानतिलकसूरि भी मिलता है । इसके द्वितीय चरण में कुछ अन्तर है किन्तु तृतीय और चतुर्थ चरण के पद्य ११८ के समान ही है । यह ग्रन्थ 'नर्मदाचार्य' की कृपा से लिखा गया, किन्तु यह नर्मदाचार्य कौन है ? शोध का विषय है । हेमरत्न के गुरु पद्मराज थे । गोरा बादिल चरित्र में इनको 'वाचक' शब्द से सम्बोधित किया गया है । सम्भव है बाद में ये उपाध्याय बने हो । हेमरत्न के सम्बन्ध में और कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं होता है ।

इस काव्य की रचना विक्रम संवत १६३८ आश्विन शुक्ला दशमी, के दिन बीकानेर में की गई । (प्रशस्ति पद्य १)

इस भावप्रदीप की रचना बच्छावत गोत्रीय श्रीवत्सराज की परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में संग्रामसिंह के पुत्र मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र के अनुरोध पर की गई है, जो कि बीकानेरनरेश रायसिंहजी के मित्र थे । बीकानेर के वरिष्ठ मन्त्री थे । नीतिनिपुण थे और लब्धप्रतिष्ठ थे (पद्य ५, ६, ७) । मन्त्री कर्मचन्द बच्छावत न केवल बीकानेरनरेश के ही मित्र थे अपितु सम्राट् अकबर के भी प्रीतिपात्र थे और पोकरण के सूबेदार भी थे ।

स्वयं पूर्णिमागच्छ के होते हुए भी खरतरगच्छ के मन्त्री कर्मचन्द बच्छावत के अनुरोध पर इस काव्य की रचना यह प्रकट करती है कि उस समय में गच्छों का और आचार्यों का अपने गच्छ के प्रति कोई विशेष आग्रह नहीं था । मुक्त हृदय से दूसरे गच्छों के श्रावकों के अनुरोध पर भी साहित्यिक रचना किया करते थे । यह हेमरत्न का उदार दृष्टिकोण था।

इस प्रश्नोत्तर काव्य में १२१ अथवा १२४ पद्य है । कवि ने इस लघु कृति में अनुष्टुप्, उपजाति, वंशस्थ, भुजङ्गप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, और स्रग्धरा आदि छन्दों का स्वतन्त्रता से प्रयोग किया है । यह प्रश्नोत्तर काव्य है । जिसमें श्लोक के अन्तर्गत ही प्रश्न और उत्तर प्रदान किए गए है । इसमें प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतक के समान श्लोक के पश्चात् अनेकविध जातियों में संक्षिप्त उत्तर नहीं लिखे हैं । काव्यगत अलङ्कारविधान प्रस्तुत करना इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं है ।

इसकी प्राचीनतम दो प्रतियाँ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में प्राप्त है, जिनका नम्बर इस प्रकार है - २००८७ । एक प्रति कवि द्वारा स्वलिखित है, दूसरी प्रति उसकी प्रतिलिपि ही है । जिसमें दो श्लोक प्रशस्ति के रूप में विशेष रूप से प्राप्त होते हैं । दूसरी प्रति में प्रशस्ति पद्य २ में कवि हेमरत्न को भी आचार्य माना गया है । प्रति का पूर्ण परिचय इस प्रकार है -

प्रति की क्रमाङ्क संख्या २००८७, इस प्रति की साईज २५X१०.९ से.मी. है । पत्र संख्या ४ है । प्रति पृष्ठ पंक्ति १७ और प्रति पंक्ति अक्षर ५२ है । विक्रम संवत् १६३८ की स्वयं लिखित प्रति है ।

दूसरी प्रति का क्रमाङ्क प्राप्त नहीं कर सका हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि की अन्य रचनाएँ

हेमरत्न प्रणीत संस्कृत भाषा में अन्य कृतियाँ प्राप्त नहीं हैं, किन्तु राजस्थानी भाषा में इनकी कई कृतियाँ प्राप्त हैं । इसमें से 'गोरा बादिल चरित्र' ऐतिहासिक चौपई ग्रन्थ है । इस चौपई की रचना १६४५ सादड़ी में की गई है और ताराचन्द कावड़िया के अनुरोध से इस रचना का निर्माण हुआ है । ताराचन्द कावड़िया महाराणा प्रताप के अनन्यतम साथी, मेवाड़ के सजग प्रहरी, दानवीर और इतिहास प्रसिद्ध भामाशाह के छोटे भाई थे, तथा उस समय सादड़ी में विशिष्ट अधिकारी थे । कवि स्वयं लिखता है -

पूनिमगछि गिरुआ गणधार, देवतिलक सूरीसर सार ।
न्यानतिलक सूरीसर तास, प्रतपइं पाटइ बुद्धिनिवास ॥६१०॥

पदमराज वाचक परधांन, पुहवी परगट बुद्धि-निधान ।
तास सीस सेवक इम भणइ, हेमरतन मनि हरषइ घणइ ॥६११॥

संवत सोलइ-सइं पणयाल, श्रावण सुदि पंचमि सुविसाल ।
पुहवी पीठि घणुं परगडी, सबल पुरी सोहइ सादडी ॥६१२॥

पृथ्वी परगट 'रांण प्रताप', प्रतपइ दिन-दिन अधिक प्रताप ।
तस मंत्रीसर बुद्धिनिधांन, कावेड्यां कुलि तिलक समांन ॥६१३॥

सांमिधरमि धुरि 'भांमुसाह', वयरी-वंस विधुंसण राह ।
तस लघु भाई ताराचंद, अवनि जाणि अवतरीउ इंद्र ॥६१४॥

ताराचन्द कावड़िया के सम्बन्ध में पुरातत्त्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी 'गोरा बादिल चरित्र' के 'एक पर्यालोचन' पृष्ठ ५ पर लिखते हैं :-

"इस रचना के मुख्य प्रेरक थे मेवाड़ के महाराणा प्रताप के अत्यन्त विश्वस्त राजभक्त, और देशभक्त, राजस्थानीय महाजनों के मुकुटसमान भामाशाह के भाई ताराचन्द ! सादड़ी नगर उस समय मेवाड़ राज्य की दक्षिण पश्चिमी सीमा का केन्द्रस्थान था । ताराचन्द वहाँ पर महाराणा प्रताप के शासन का एक विशिष्ट स्थानक अधिकारी था । कवि हेमरत्न भामाशाह और ताराचन्द के धर्मगुरुओं के शिष्य-समूह में से एक प्रमुख व्यक्ति थे ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* * * * *

यह रचना उदयपुर राज्य और राजवंश से विशिष्ट सम्बन्ध रखने वाले ओसवाल जाति के कावड़िया गोत्रीय ताराचन्द के आदेश और अनुरोध से बनाई गई है । ताराचन्द जैसा कि ऊपर कहा गया है, भामाशाह का छोटा भाई था । महाराणा प्रताप का वह विश्वस्त राज्याधिकारी था । भामासाह के साथ वह भी प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध का एक अग्रणी योद्धा और सैन्य संचालक था । उसने चित्तोड़ के राजवंश की रक्षा के निमित्त अनेक प्रकार से सेवा की थी, अतः उसके मन में चित्तौड़ के गौरव की गाथा का गान करवाने का उल्हास होना स्वाभाविक ही था । (पृष्ठ ७)

यह पुस्तक 'गोरा बादिल चरित्र' के नाम से मुनिजी द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से सन् १९६८ प्रकाशित हो चुकी है ।

इस कृति के आधार से निश्चित तो नहीं किन्तु यह सम्भावना की जा सकती है कि वीर भामाशाह कावड़िया भी पूर्णिमागच्छीय थे ।

कवि की अभयकुमार चौपई, महीपाल चौपई (र. सं. १६३६), शीलवती कथा (र. सं. १६१३, पाली) लीलावती कथा (र. सं. १६१३), रामरासौ और सीता चरित्र आदि नाम की भी अन्य रचनाएँ उपलब्ध है । इन कृतियों का उल्लेख मुनिजी ने-गोरा बादल चरित्र, एक पर्यालोचन-पृष्ठ ७ में किया है ।

कविवर-श्रीहेमरत्नप्रणीतो

भावप्रदीपः

[प्रश्नोत्तरकाव्यम्]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमते [१]विश्वविश्वैकभास्वते शाश्वतद्युते ।
केवलज्ञानिगम्याय नमोऽनन्ताय तेजसे ॥१॥

---

१. ब. समस्त ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[2]प्रभूतभूतिप्रविभूषिताङ्गकः, प्रध्वस्तकामः समकामदः[3] सदा ।
प्रभुर्विभूनामपि मङ्गुलार्गलः[4] स मङ्गलं रातु वृषध्वजो विभुः ॥२॥
पञ्चाननाङ्कितजगत्प्रभुपादसेवी, श्रीमद्विलोलविकसत्करपुष्कराग्रः ।
विघ्नौघपाटनपटुः कटुकष्टकृट्[5] च, निर्मातु मङ्गलगणं गुणवान्गणेशः ॥३॥
नमः समाजस्थितसज्जनेभ्यः, प्रसन्नचित्ताननपङ्कजेभ्यः ।
परप्रणीतान्यपि ये वचांसि, स्वभावभेदैः परिभूषयन्ति ॥४॥
श्रीविक्रमाख्ये नगरे गरिष्ठः, प्रज्ञाप्रपञ्चेऽस्तितमां पटिष्ठः ।
मन्त्रप्रयोगे प्रथितप्रतिष्ठः, श्रीकर्मचन्द्रः सचिवो वरिष्ठः ॥५॥
तत्प्रार्थनाजातपरप्रमोदः, स्वान्तस्य तस्यैव विनोदहेतोः ।
कुर्वे नवीनं कमनीयकाव्यै-र्भावप्रदीपाभिधशास्त्रमेतत् ॥६॥
श्रीवत्सराजान्वयमौलिरत्नं, संङ्ग्रामसिंहस्य तनूजराजः ।
श्रीराजसिंहाभिधभूपमित्रं[6], श्रीकर्मचन्द्रः सचिवः स जीयात् ॥७॥
न हि निखिलशास्त्रबोधो मतिरपि विमला न तादृगभ्यासः ।
किन्तु कवित्वे शक्तिर्गुरुरेकः[7] कारणं मेऽत्र ॥८॥
सस्नेहमुत्सङ्गनिवेशितोऽम्बया[8], वक्षोजविध्वस्ते[9]-महेभकुम्भया ।
शीर्षं गणेशः खलु शङ्कया कया, पस्पर्श विद्वन्! वद पृच्छ्यते मया ॥९॥
कुम्भावुभावपि ममाङ्कगतस्य मातु-
र्लग्नाववश्यमिति वक्षसि शैशवे [सः]* ।
[श]ङ्कासमाकुलितचित्तमिभाननः स्वौ,
कुम्भौ करेण झटिति स्पृशति स्म तेन ॥१०॥
काचिच्चञ्चललोचना नववधूः प्रातर्मुखं दर्पणं,
प[श्यन्ती शि]थिलालकं पतिरतिप्राग्भारं[10]-संसूचकम्[11] ।

---

२. ब. प्रचुर । ३. ब. समग्रं सकलं सममिति । ४. ब. मंगुलशब्दो देश्यः, मंगुलस्य अशोभनस्य अर्गलेति, कल्याणः । ५. ब. कट्वकार्ये त्रिषु मत्सरतीक्ष्णयोरित्यमरः । ६. ब. प्रती 'मन्त्री' इति पाठान्तरम् । ७. ब. केवलः । ८. अ. ब. पार्वत्या । ९. अ.ब. तिरस्कृतौ । १०. अ.ब. आधिक्यं । ११. अ.ब. कथकं ।
*-[ ]अ. पुस्तके भग्नपत्रत्वादत्र कोष्ठकान्तर्गतांशो ब. पुस्तकादुद्धृतः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र कोष्ठकान्तर्गतांशाः ब. पुस्तकादेवोपन्यस्ता ज्ञेया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तस्थितिमाश्रिताऽपि च पराङ्वक्त्राऽपि भूरित्रपा-[१]

वीचिव्यूहे[२]निमग्नचित्तचटुला क[स्मादकस्मा]दभूत् ॥११॥

पृष्ठस्थितस्य निजजीवितवल्लभस्य, वक्त्रारविन्दममलं मुकुरे समीक्ष्य ।

श्रीकर्मचन्द्रसचिवेश्वर ! तेन चैषा, [लज्जावती नव]वधूः सहसा बभूव ॥१२॥

काचित्कुलीनवनिता रमणेन दूर-देशात् सुकङ्कणयुगं प्रहितं निरीक्ष्य ।

निःश्वासदग्धदशनच्छदं[३][माप्तदुःखा], [गूढं[४] रु]रोद वद कोविद किं निदानम् ॥१३॥

नाथः स मां विरहवह्निकृशां न वेत्ति, नाऽसावपीह विरहा[तुरचित्तवृ]त्तिः[५] ।

[नो चेत् कथं पृथुलकङ्कणयुग्ममत्र] मां मुञ्चतीति विगणय्य[६] वधू रुरोद ॥१४॥

काचिन्निजं कान्तमवेक्ष्य कोप-कल्लोल[मग्नावनताननाऽभूत्] ।

[तत्कारणं पृच्छति सत्यमुष्मिन्[७]], [किं दर्पणं तस्य] करे [ददौ सा]॥१५॥

अन्याङ्ग[नानय]नपङ्कजचुम्बनेन, कृष्णाधरस्ति[लकचित्रितभालदेशः] ।

[अप्येष पृच्छति रुडुद्भवहेतुमस्मात्, सा दर्पणं वितरा]ति स्म करे तदीये ॥१६॥

[काचि]न्निजे भर्त्तरि दूरदेशं, सम्प्र[स्थिते तत्कुशलेषिणी सा]

[गच्छाऽऽशु माऽभूत्तव] दर्शनं मे, शीघ्रं वधूरेवमुवाच कस्मात् ॥१७॥

तद्यार्न-माकर्ण्य मृतामवश्यं, मुक्त्वा [समायाति तदेत्य वल्गुं[९]]।

[मा दर्शनं मेऽस्तु] ततो मृताया, नाथस्य शीघ्रं बहुजीवितस्य ॥१८॥

पूर्णेणाङ्कमुखी[१०]- महं हृदि मम त्रस्तैणशावेक्षणे,

[त्वामद्यैव विभावयामि[११] च नि]जप्राणप्रिये[१२] स्वप्रियाम् ।

इत्थं जल्पति हास्यपेशलै[१३]-मथो सा स्वं करेणे[१४] द्रुतं,

गल्लं फुल्लमधूकपुष्पपुलिनं पस्पर्श वस्त्रेणै[१५] [किम्] ॥१९॥

पूर्णे चन्द्रमसि ध्रुवं[१६] बत भवत्येव स्फुटं लाञ्छनं,

नाऽस्मद्वक्त्रसरोरुहेऽतिविमले कालुष्यलेशोऽपि च

तज्ज्ञाने खलु सोपमान[वचसाऽनेना]ऽधुना कज्जलं,

गल्लेऽस्तीति ममार्ज[१७] लोलनयना हस्तेन गल्लस्थलम् ॥२०॥

---

१. अ.ब. बह्वी । २. अ.ब. समूहं । ३. ब. दन्तपत्रम् । ४. ब. गुप्तम् । ५. अ. पीडितव्यापारः । ६. ब. विचार्य । ७. ब. भर्त्तरि । ८. अ. गमनम् । ९. ब. चारु । १०. ब. अङ्ककलङ्कोऽभिज्ञानम् । ११. ब. जानामि । १२. ब. भर्त्तरि । १३. ब. मनोहरं । १४. ब. कृत्वा । १५. ब. सह । १६. ब. निश्चितम् । १७. ब. मृजूष् शुद्धौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशि वियोगवती युवती गृहे, विधुमवेक्ष्य नभोऽङ्गणमध्य[गम्]।
[स]खि समानय दर्पणमाशु मे, क्षुरिकया सह चेति कथं जगौ ॥२१॥
दहति मामयमेणभृदातुरां, चरति चाऽलि ! दवीयसि पुष्करे[१] ।
तदमुकं[२] मुकुरान्तरुपागतं, क्षुरिकया प्रविभेत्तुमिदं[३] जगौ ॥२२॥
मातुर्निजायाः पदपद्मयुग्मं, नत्वोपविष्टः पुर एकदन्तः ।
पस्पर्श मूर्द्धानमसौ करेण, कस्मादकस्माद् वद कोविदेन्द्र ! ॥२३॥
गौरीपदाम्भोजयुगप्रजाता-रुणत्वरक्तीकृतमीक्ष्य भूतलम् ।
स्वकुम्भसिन्दूररजोभिशङ्कया, मूर्द्धानमेष स्पृशति स्म तेन ॥२४॥
सुदति पृच्छति[४] भर्त्तरि [५]गद्यता-मितरदेशगतोऽभिमतं[६] तव ।
अहमिह प्रहिणोमि[७] किमादरात्, तदनु साम्भसि किं तिलमक्षिपत् ॥२५॥
तिलकयोर्व्यतिषङ्गवशादसौ, तिलकमेव निवेदयति स्म तम् ।
इतरथा कथमेव जले तिलं, क्षिपति मन्त्रिप ! कं परनामनि[८] ॥२६॥
कश्चिद् युवा युवतिवक्त्रमवेक्ष्यमाणो,
नाऽहं विलोचनयुगो धृतिभाग् भवामि ।
एवं विचिन्तयति चेतसि तावदासीत्,
सद्यः स कोविद वदाशु कथं षडक्षः[९] ॥२७॥
स स्वकीयनयनद्वयमध्ये, बिम्बितप्रियतमानयनोऽभूत् ।
एवमेव[१०] सचिवेश्वर ! सद्य, सोऽभवन्नयनषट्कसमेतः ॥२८॥
तदभिलषितकान्तोपान्ततोऽभ्यागताशु, स्ववगततदभिप्राया[११] समागत्य दूती ।
तरुणमरुणरश्मिस्पृष्टपङ्केरुहास्यं, जनवृतमभि दृष्ट्वा सर्षपं तत्करेऽदात् ॥२९॥
शीघ्रमेव समागत्य दूत्याऽथ कृतकृत्यया ।
सर्षपस्यैव दानेन सिद्धार्थोऽसीति सूचितम् ॥३०॥
अभ्यर्णमभ्येत्य[१२] हरेः स्वभर्तुः, प्रसन्नचित्ता परिरम्भणाय ।
जगाम कस्माच्चटुवादिनोऽपि[१३], पराङ्मुखी सत्वरमेव पद्मा ॥३१॥

---

१. ब. खे । २. ब. चन्द्रं । ३. ब. विदारयितुं । ४. ब. सति । ५. ब. इति इति त्वया । ६. ब. ईप्सितं । ७. ब. प्रेंखयामि (प्रेषयामि?) । ८. ब. अलुकामासः । ९. ब. षड् अक्षीणि यस्य, नयनानां षट्कं तेन । १०. ब. अनेन प्रकारेण । ११. ब. शोभनोऽवगतस्तस्या अभिप्रायो यया सा । १२. ब. समीपमागत्य । १३. ब. चटुचाटुप्रियप्रायं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्वक्षःस्थलकौस्तुभे निजवपुर्दृष्ट्वेति जातभ्रमा,

नूनं नाऽहमरेर्मुरस्य हृदि यत् पश्यामि तत्राऽपराम् ।

पद्मा तेन समौनकोपकलिता[1]-ऽभ्यर्णं समेताऽपि च,

[2]प्रास्तप्रीतिभरौ[3] स्म गच्छति शृणु श्रीकर्मचन्द्रप्रभो ! ॥३२॥

प्राणप्रिये [4]दभ्रदिनैः समेते, देशान्तराददर्ति[5] सम्प्रयोगम्[6] ।

काचित्कुरङ्गीनयना निशायां, मूर्द्धन्यमुञ्चत्कथमाशु पुष्पम् ॥३३॥

अहं पुष्पवती कान्ता कथमायामि साम्प्रतम् ।

सम्भोगो नाऽधुना योग्यश्चेति ज्ञापितमेतया ॥३४॥

काचित्कोविद ! कामिनीकरतलेनाऽऽदाय किञ्चित्फलं,

दृष्ट्वा दष्टमिदं खगेन सहसा केनाऽपि किञ्चिततः ।

शङ्कासङ्कुचिता सती निजकरे सा वै दधौ दर्पणं,

निःशङ्काऽथ निराचकार च करात्मौनान्विता तत्फलम् ॥३५॥

विलोक्य बिम्बाह्वफलं शुकेन, दष्टं मृगाक्षी पतिखण्डितौष्ठी ।

सादृश्यशङ्का धृतदर्पणासीद्, विचिन्त्य तत्कुत्सितमित्यमुञ्चत् ॥३६॥

पत्युः [7]प्रवाससमये मृगशावकाक्ष्या, पृष्ठे(ष्टे?) पुरा[8] भवति कर्हि[9] समागमस्ते ।

स स्वाग्रजं सति पितर्यपि वल्लभायाः, कस्माददर्शयदसौ वद कोविदाऽऽशु ॥३७॥

ज्येष्ठदर्शनतोऽनेन ज्येष्ठमासो निवेदितः ।

तद्देशमागते वाऽस्मिन् भविष्यति ममागमः ॥३८॥

काचित्कोपनिरुद्धवागवनतौ[10]-ऽश्रुव्याप्तनेत्राम्बुजा,

पत्याऽगो[11]-ऽनलदह्यमानहृदयाऽपास्ते[12]-प्रियप्रीतवाक् ।

कुर्वाणे निजभर्त्तरि [13]क्षुतमथो सा किं ललाटे निजे,

चित्रं रत्नकैर्विचित्रमकरोदाचक्ष्व तत्कारणम् ॥३९॥

कुर्वाणे मम भर्त्तरि [14]क्षुतमहं जीवेति वाक्यं न चे-

ज्जल्पान्याशु तदा व्रजत्यवसरश्चेद् वच्मि [15]तेद्याति मे ।

---

१. ब. व्याप्ता । २. ब. ध्वस्त । ३. ब. समूह । ४. तूर्यदभ्रं पुरस्फिरमिति कोशः । ५. ब. यात्नयति सति । ६. ब. संवेशनं । ७. ब. प्रयाण । ८. ब. पुरा योगे भविष्यतार्थता । ९. ब. कदा । १०. ब. प्रतौ **वनिता** इति पाठः । ११. अ. अपराधः । १२. ब. निराकृता । १३. ब. छिक्का । १४. ब. प्रतिमहं । १५. ब. तर्हि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मौनं मानभवं विचार्य तरुणीति स्वे ललाटेऽकरो-
च्चित्रं[1] तेन निवेदितं स्फुटतरं जीवेति वाक्यं यतः ॥४०॥
कश्चित्तृषार्त्तो मतिमान्निदाघे, हस्तस्थनीरोऽपि निजालयस्थः ।
किं शून्यमालोक्य पपौ न वारि, ब्रूतात् कवे ! तद्यदि बुध्यसे त्वम् ॥४१॥
दृष्ट्वाऽऽकाशं शून्यमृक्षेन्दुसूर्यैः, सायं नाऽयं नीरपानं चकार ।
विश्वव्यापिप्रोज्ज्वलश्लोकराशे ![2] वर्यं वार्यत्राऽखिलैर्यन्मुनीशैः ॥४२॥
कश्चिद्विनीतो नयविद्गृहस्थो, [3]निर्दम्भमालोक्य गुरुं[4] पुरस्तात् ।
नाभ्युत्थितो नाऽपि गतः समीपं, ननाम नासीन्न तथापि निन्द्यः ॥४३॥
वियति[5] जीवमुदीक्ष्य समुद्गतं, न - नमितः स निजं न तु सद्गुरुम् ।
सचिवशेखर ! तेन स ना जनै-र्नयरतैरपि नैव विगर्हितः[6] ॥४४॥
काचित्कुरङ्गीनयना निशाया-मात्माननस्पर्द्धिनमिन्दुमुच्चैः ।
आलोक्य भूस्थाऽपि कुतूहलाय, जग्राह हस्तेन कथं वदाऽऽशु ॥४५॥
दर्प्पणान्तःप्रविष्टं सा रोहिणीरमणं निशि ।
[7]तरसा [8]करसाच्चक्रे कौतुकेनैव कामिनी ॥४६॥
गगनसरसि हंसीभूत एणाङ्कबिम्बे-
ऽभिमतरमणधिष्ण्यां[9]-म्भोजभृङ्गीभवित्री[10] ।
अपि पथि जनयुक्ते स्वैरिणी किं प्रयान्ती,
नयनविषयमेषा न प्रयाता जनानाम् ॥४७॥
धृतसिताम्बरभूषणलेपना, [11]कुमुदराजिविराजितविग्रहा[12] ।
धवलिते शशिनाऽखिलभूतले, न कुलटेति गता पथि लक्ष्यताम् ॥४८॥
कश्चित् कथञ्चिन्निजचित्तचारी, लब्धः सुमाल्याम्बरभूषणोऽपि ।
भुक्तः स नो [13]वासकसज्जयाऽपि, नाऽसावपीमां बुभुजे किमेतत् ॥४९॥
कान्तारूपमतीवसुन्दरमलङ्कारैरलं भूषितं,
दृष्ट्वा मन्मथमूर्च्छितः स तरुणश्चक्रे स्वशुक्रच्युतिम्[14] ।

१. चित्रकरणेन । २. यशस्विन् । ३. ब. निष्कपटं । ४. ब. जीवं । ५. ब. आकाशे । ६. ब. निन्दितः । ७. ब. वेगेन । ८. ब. कराधीनं करसात् । ९. ब. गृहं । १०. ब. अमृङ्गी भृङ्गी भविष्यति । ११. ब. श्वेते तु तत्र कुमुदम् । १२. ब. इन्द्रियायतनमङ्गविग्रहाविति । १३. ब. भवेद्वासकसज्जासौ सज्जिताङ्गरतालया । निश्चित्यागमनं भर्तुर्द्वारेक्षणपरा यथा । १४. ब. शुक्रं रेतो बलं वीर्यं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्यः प्रेक्ष्य मनोभवोपममिदं साऽपि द्रवत्वं गता
सम्भोगः प्रथमस्तयोरिति गतः सिद्धिं न तत्र क्षणे ॥५०॥
परस्परं रूपविमोहितौ तौ, गतौ द्रवत्वं समकालमेव ।
ततस्त्रपाभारभरावभूतां-मन्योन्यमेतेन न सङ्गसिद्धिः ॥५१॥ पाठान्तरम्[2]
भर्तुर्वियोगेन विषण्णचित्ता, [3]काचित् कुरङ्गीनयना निशीथे ।
उद्वेजकं[4] सर्वमपीति मत्वा, कस्मात्करानेणभृतः सिषेवे ॥५२॥
तत्राप्येते शशधरकरौ मत्पतेरङ्गसङ्गं,
कुर्वन्त्येव ध्रुवमिति वधूश्चेतसि स्वे विचिन्त्य ।
तानत्रापि स्वपतिवपुषाऽऽलिङ्गितानिन्दुपादान्,
प्रेष्ठान्कष्टादपि विरहिणी चक्रवाकीव भेजे ॥५३॥
[6]नैशसन्तमससञ्चयराहु - ग्रस्तदृक्प्रसरपङ्क्तिहयोऽपि[7] ।
कोऽप्यचित्रितमपीह, सचित्रं, हस्तमैक्षत समस्तमिदं किम् ॥५४॥
किमत्र चित्रं गगने निशायां, हस्तं स चित्रायुतमप्यपश्यत् ।
विचार्यते किं मुहुरेष चार्थो, दृष्टोऽपि नित्यं बहुभिः स्वनेत्रैः ॥५५॥
जित्वा रिपुबलमखिलं समितिं झटित्येव कर्मचन्द्र ! त्वम् ।
धृतजयलक्ष्मीकोऽपि हि, नाऽतुष्यस्तत्र को हेतुः ? ॥५६॥
अधिकसूरतया समरोत्सवं, रचयतस्तव वीतमिमं क्षणात् ।
सचिवशेखर ! तेन जिताप्यभू-न्न रतिदा रतिदापि पताकिनी ॥५७॥
युवा कोऽपि प्रातर्विषमविशिखो[9]-द्वेजितमना
अमुञ्चद् बन्धूकप्रसवमुडुपास्यामभिमताम् ।
ततः साऽपि प्राप्य प्रियहृदयभावं स्मितमुखी,
हरिद्रामेवामुं कथय किममुञ्चत् कविवर ! ॥५८॥
बन्धूकपुष्पेन स मध्यमह्नः, संकेतहेतोः कथयाम्बभूव ।
सा दर्शयामास हरिद्रयाऽथो, दोषामदोषामिति मन्त्रिराज ! ॥५९॥

१. ब. बभूवतुः । २. ब. पाठान्तरेण । ३. ब. सती । ४. ब. उद्वेगकारकं । ५. ब. चन्द्रमाः कुमुदबान्धवो दशश्वेतवाज्यमृतसूस्तिथिप्रणीः । ६. ब. अन्धकारं । ७. पंक्तिशब्दो दशवाची, पंक्तिहयाः यस्य । ८. ब. संग्रामे । ९. ब. बाणाः, विषमविशिखा यस्यासौ कामदेवः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काचित्पत्रममत्रमत्र मदनव्यापारवारः[१] स्फुरत्-
प्रीतिस्फातिकरं[२] करेण सहसोन्मुद्र्य[३] प्रियप्रेषितम् ।
अत्यौत्सुक्यभरं दधत्यपि पतिप्रीत्याथ तद्वाचने,
सैकाकिन्यपि तत्तथैव सुचिरं संवृत्य तस्थौ कथम् ॥६०॥
पत्रं विलोक्य प्रियमुक्तमेषा, यावत्प्रवृत्ता खलु वाचनाय ।
तावज्जलं नेत्रयुगात्प्रभूतं, प्रवृत्तमेतेन न वाचितं तत् ॥६१॥
कश्चित् स्वकान्ताकरकुड्मलस्थं[४], मुक्ताफलानां निकरं निरीक्ष्य ।
प्रीतस्तम[त्तुं] स समुत्सुकोऽभूत्, किं कारणं तद्वद कोविदाऽऽशु ॥६२॥
सुरक्तकान्ताकरकोरकस्थं[५], सद्दाडिमीबीजचयं विचिन्त्य ।
मुक्ताफलानामपि राशिमासी-ज्जग्धुं[६] समासक्तमनाः स नाऽऽशु ॥६३॥
काचिदम्भोजमादाय प्रातः सौरभ्यसुन्दरम् ।
सादरं सदरा साऽथो कथ तदजहात् करात् ॥६४॥
निशि यदा ननु सङ्कुचितं कजं, सपदि तत्र गतोऽन्तरलिस्तदा ।
उषसि तन्निगृहीतमिदं तया, श्रुतरवं च ततो मुमुचे करात् ॥६५॥
पत्रं मषी लेखनिका प्रदीपः, साऽप्यप्रमत्ता रमणे रताऽपि ।
एवं समग्रे मिलितेऽपि हेतौ, लिलेख लेखं न हि सा किमेतत् ॥६६॥
यावत्प्रवृत्ता लिखनाय लेखं, सम्मील्य[७] वस्तून्यखिलानि चैषा ।
तावत्प्रवृत्तं नयनाम्बु भूरि, तेनाऽलिखल्लेखमसौ न नारी ॥६७॥
[८]कुमुद्वती भर्त्तरि हर्तुमुद्यते, ह्यंशुपादैः प्रियविप्रयुक्ता ।
काचित्कलैः कोकिलकेलिवाक्यैः, किं दुस्सहैरप्यतिशर्म लेभे ॥६८॥
परभृता(तो) वचनानि कुहूः कुहू[९]-रिति निशापतिनाशकराणि तैः ।
श्रुतिगतैः शशिरश्म्यतिपीडिता, विरहिणीति सुखं लभते स्म सा ॥६९॥
हृदो मुदः कारिणि पञ्चवक्त्रे, दातुं समालिङ्गनमागतेऽपि ।
गौरी गृहस्तम्भ[१०]-मनन्तभीतिः, प्रत्यग्रहीत् कोपपराङ्मुखी किम् ॥७०॥

---

१. ब. प्रतौ **'व्यापारवारं'** इति पाठः । ब. विस्तार । २. ब. वृद्धिकरं । ३. उद्घाट्य । ५. ब. कलिका कोरकः पुमानित्यमरः । ६. ब. हन्तुं । ७. ब. एकत्रीकृत्य । ८. ब. कैरवाणां कुमुद्वती, चन्द्रे । ९. ब. सा. नष्टेन्दुकला कुहूः । १०. ब. स्थूणा स्तम्भ इत्यमरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चास्ये निजनायके गृहलतादूर्ध्वं समागच्छति,
क्षोणीभृत्तनयान्तिके तनुपरीरम्भार्थं[1] सत्युत्सुकम् ।
वक्षोजप्रतिबिम्बिते दशमुखं मत्वा पुनस्तत्कृतं,
स्मृत्वा पर्वततोलनं पतनभीः स्तम्भं ततः साऽग्रहीत् ॥७१॥

सौमित्रिरात्मीयसहोदरस्य, पपात रामस्य पदोस्तदाशु ।
रामः सकोपं धनुषि स्वकीये, बाणं कृपाणं च करे चकार ॥७२॥

नखेषु रामस्य स निर्मलेषु, प्रविष्टवक्त्रः क्रमयोः समासीत् ।
रामस्तु तं रावणमेव मत्वा, बाणं कृपाणं च करे चकार ॥७३॥

धृतनवैककलामयमूर्त्तये, शशभृते सखि सूक्ष्मपटाञ्चलः ।
वितरणीय[3] इति प्रियसन्निधौ[4], किमुदिता करमाशु तिरोदधौ[5] ॥७४॥

वल्लभे स रतिसन्निधिमस्या, नव्यमिन्दुमवलोकयतीदम् ।
सख्युवाच [6]नखरक्षितिगुप्त्यै, साऽपि जारनखमाशु जुगोप ॥७५॥

काचित्प्रसन्ना प्रियवल्लभाऽपि, रहोविलीना प्रियवल्लभाऽपि ।
आलिङ्गनप्रह्व[7]-मुदीक्ष्य नाथ, सा संवृताङ्गी किमुवाच मा मा ॥७६॥

नाऽऽलिङ्गनस्यावसरोऽस्ति तस्या, जाताऽधुनैवाऽस्ति रजःस्वला सा ।
इति प्रिया संवृतगात्रवस्त्रा, मा मेत्यमन्दं[8] निजगाद नाथम् ॥७७॥

रुद्धव्योमघनोद्भवावतमसव्याप्तान्तरायां निशि,
त्रस्तारण्यमृगीक्षणा सहचरी धाम्नः स्वभर्तुः स्वयम् ।
यावन्निर्भर[9]-नूपुरारवमसावभ्यर्णमभ्यागता,
तावत्तत्पतिनाऽऽशु मन्दिरमणिर्विध्यापितः[10] किं वद ॥७८॥

अन्याङ्गनासुरतचिह्नविचित्रिताङ्गः, प्राप्तोऽस्ति केलिशयनं स यदा तदैव ।
कान्तां निजामथ विलोक्य समापतन्तीं, तद्भीतिभिन्नहृदयो हरति स्म दीपम् ॥७९॥

[11]कुड्येषु [12]कार्त्तस्वरमन्दिराणा-मेणाङ्कमुख्यः प्रतिबिम्बितानाम् ।
वक्त्राण्यपश्यन् वपुषां निजानां, नाङ्गानि नाट्यावसरे किमेतत् ॥८०॥

---

१. ब. अङ्कपाली परीरम्भः । २. ब. लक्ष्मणः । ३. ब. दातव्यः । ४. ब. पार्श्वे । ५. ब. आच्छादयामास । ६. ब. पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियामित्यमरः । ७. ब. उत्कण्ठितं । ८. उच्चैः । ९. ब. बलिष्ठ । १०. ब. अस्तं प्रापितः । ११. अ. भित्ति । १२. स्वर्णमन्दिर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताः शारदेन्दूपमपाण्डुवक्त्राः, कायेन चामीकरतुल्यभासः ।
तस्मादिमाः काञ्चनभित्तिभागे, वक्त्राण्यपश्यन्न हि शेषमङ्गम् ॥८१॥

काचिन्निशि व्योमगतेव देवी, [१]वातायनस्योपरि संस्थिताऽपि ।
अलक्षिताऽलक्षितसौधमुच्चै-रेतत् किमासीद् वद कोविदाशु ॥८२॥

शीतांशुरश्मिप्रकरावमग्ने[२], सा स्फाटिके सौधतले[३] निषण्णा ।
अलक्षिताधःस्थितसौधमेवं[४], देवीव लोकैर्ददृशेऽम्बरस्था ॥८३॥

कश्चित्करेणु[५]-र्मदसिक्तरेणुः, प्रत्यापतन्तं कृतकोपमाशु ।
आत्मानमेवाऽभिदधाव दूरा-दाचक्ष्व किं कारणमत्र दक्ष ! ॥८४॥

ऊर्मौ महत्यम्बुनिधेरिभेशः, प्रत्यापतन्तं[६] प्रतिबिम्बितं[७] सः ।
आत्मानमेवं[८] प्रविलोक्य कोपा-दन्येभशङ्कोऽभिदधाव दूरात् ॥८५॥

यद्वेश्म वर्षास्वपि वारिदाना-माऽभेदि वार्भिर्न कदापि मध्ये ।
तत् किं विभोः कस्यचिदम्बुयोगं, विनाप्यभूद् वारिमयं निशासु ॥८६॥

[९]शिशिररश्मिकरप्रकरप्लुतं[१०], [११]प्रवरचन्द्रमणिस्फुटकुट्टिमम्[१२] ।
सदनमम्बु विनाऽपि निशास्वभूत्, सचिवशेखर ! वारिमयं ततः ॥८७॥

वारिकेलिसमये वनिताभि-र्लब्धिमग्निसमिधां हि विनाऽपि ।
अन्वभावि शिशिरं पुनरुष्णं, किं तदेव सलिलं सरसोऽन्तः ॥८८॥

उपरि तरणितापादुष्णमन्तस्तदम्भः,
शिशिरमिति विदान्तच्चक्रुरुष्णं च शीतम् ।
विषमविशिखतापादुष्णमङ्गेषु लग्नं,
तदितरमिति शीतं [१३]वाविदाञ्चक्रुरेताः ॥८९॥

[१४]सुरभिसङ्गसमुद्धतकोकिल-भ्रमरराजिविराजितकाननम् ।[१५]
निजगृहं पथिकश्चिरमागतः, कथमुदीक्ष्य तथैव पुनर्ययौ ॥९०॥

---

१. अ.ब. गवाक्षस्य । २. ब. लग्ने । ३. ब. सौधं तु नृपमन्दिरम् । ४. ब. अनेन प्रकारेण । ५. अ. हस्ति । ६. अ.ब. सम्मुखमागच्छन्तं । ७. ब. प्रतिफलितं । ८. ब. प्रतौ '**आत्मानमेव**' इति पाठः । ९. ब. शीते तुषार शिशिर इति । १०. ब. लापिनं । ११. ब. श्रेष्ठ । १२. ब. कुट्टिमत्वेस्यबद्धभू । १३. ब. विद् ज्ञाने । १४. ब. वसन्त इक्षुः सुरभिः पुष्पकालो बलाङ्ककः । १५ वाटिकां ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसन्तेऽप्यायाते गलदवधिरेष प्रियतमः,
समायातो नेति स्फुटितहृदया सा यदि मृता[1] ।
तदा किं हर्म्येण ध्रुवमथ यदा सा न च मृता,
तदाप्यस्नेहायां[2] कृतमिह[3] गृहेणेति वलितः ॥९१॥

पौरा रदानेव पुरःसराणा[4]-मालोकयामासुरिभेश्वराणाम् ।
नाङ्गानि कस्माद् ददृशुः कदाचित्, किं चात्र चित्रं वद कोविदाशु ॥९२॥

विसृत्वरा[5] राजपथे निशायां, बंहीयसा[6] संतमसेन नागाः ।
लक्षत्वमेते न गताः सदृक्त्वाद्दन्तास्तु[7] दीप्तिं दधुरुज्ज्वलत्वात् ॥९३॥

जग्धुं समायातमपि स्वधान्यं, न त्रासयामेणगणं बभूवुः ।
केदारगोप्यः कथमेष चापि, नाऽऽदात् क्षुधार्त्तोऽपि हि शालिसस्यम् ॥९४॥

केदारगोपी कलगानमग्ना, जक्षुः[8] कुरङ्गा न हि शालिसस्यम् ।
ता अप्यतोप्यऽक्षिदिदृक्षयापि, न त्रासयामेणगणं बभूवुः ॥९५॥

कश्चिद्गतः काञ्चनमेव लातुं, कृत्वाऽपि वित्तं निजहस्तमध्ये ।
बध्वा रजःपोट्टलिकां स गेहे, समागतः किं वद चित्रमेतत् ॥९६॥

वित्तं कराद्व्यग्रतयाऽस्य मार्गे, पपात धूलीपिहिते[9] ततः सः ।
तत्रत्यधूलीपटलं प्रमील्य, तच्छोधनायाशु गृहं निनाय ॥९७॥

तनुसुतनुरिरंसुः[10] कामधामोज्ज्वलश्री-
रुषसि गृहवनान्तर्गन्तुकामाप्यवश्यम् ।
अनुवलति ततः स्म व्यग्रकेशाकुलाक्षी[11],
सचकितमिति कस्माच्चिन्त्यमेतद् वदाशु ॥९८॥

गृहवनमुपयाति यावदेषा, भ्रमरगणोऽभिमुखं दधाव[12] तस्याः ।
वदनसुरभितानुबद्धलोभः, प्रतिवलति स्म ततो झटित्यमुष्मात्[13] ॥९९॥

---

१. अ. मुई तस सनेही गई रही तउ तुट्टउ नेह । जिणि परि तिणि परि धण गई वरसि सुहावा मेह । २. ब. प्रतौ **तथाप्यस्नेहायामि**ति पाठः । ३. ब. अलं । ४. ब. अग्रे गच्छतां । ५. अ. ब. प्रसरणशीलो । ६. ब. प्रचुरेण । ७. ब. सवर्णत्वात् । ८. ब. भक्षयामासुः । ९. ब. संवृत्तं पिहितं छन्नं । १०. ब. क्रीडितुकामाः । ११. ब व्यस्त इति इति वा । १२. सन्मुखं जगाम । १३. अ. वनात्; ब. अस्मात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]दवीयसोप्यागतमात्मकान्तं, संवीक्ष्य काचित् कृतमौनमेव ।
एत्यालयान्तः पुरुहूतपूष-स्वर्गापगाः[2] पूज्य किमर्दति स्म ॥१००॥
इन्द्राद्रवेश्चापि सुरापगाया, अक्ष्णां कराणां च तथा मुखानाम् ।
प्रत्येकमेवेति सहस्रमेषा, यतो ययाचे तदुपास्तिकामा ॥१०१॥
क्रीडाशुकं पञ्जरतः प्रभाते, काचिन्निजे पाणितलेऽभिनीयै[3] ।
अध्यापनायोद्यतमानसाऽपि, साऽध्यापयामास कथं न पश्चात् ॥१०२॥
[4]रदा दाडिमीबीजतुल्या मदीयाः, शुकः प्रातरस्ति क्षुधार्त्तः स नूनम् ।
अतश्चञ्चुघातं समाशंक्य तन्वी, न तं पाठयामास सा केलिकीरम् ॥१०३॥
प्रियस्य काचिद् [5]रभसाऽभिसारिणी[6], समेत्य सद्माङ्गणमुज्ज्वलं निशि ।
तमङ्गुलीयेन[7] निहत्य सत्वरं, विवेर्श[8] पश्चादिति किं तदिङ्गितम् ॥१०४॥
अनणुमणिनिबद्धं प्राङ्गणं तस्य धाम्नः,
प्रतिफलितघनान्तस्तारतारं समीक्ष्य ।
सलिलमिति विचिन्त्य व्यग्रचित्ता तदन्त-
र्गमनमभिलषन्ती[9] मुद्रया तज्जघान ॥१०५॥
काचित्कान्ता भर्तुरालोक्य वक्त्रं, [10]चञ्चच्चन्द्राखण्डबिम्बानुकारि ।
चिक्षेपाऽक्ष्णोः किं पुनः कज्जलं सा, विद्वन्नेतद्भावमावेदयाऽऽशु ॥१०६॥
पत्युः साऽधरपल्लवे[11] नयनयोरात्मीययोरञ्जनं,
दृष्ट्वा चुम्बनतः समं[12] स्मितमुखी निष्कज्जले लोचने ।
मत्वैवं पुनरेव नेत्रयुगले चिक्षेप सा कज्जलं,
श्रीमन्त्रीश्वर ! कर्मचन्द्र ! शृणुताद् भावार्थमेनं शुभम् ॥१०७॥
तद्वस्तुभूयोऽपि निवेदितं मया,
नाऽनीयतेऽद्यापि कथं विभो ! त्वया ।
तत्किं मृगाक्षि ! प्रणिगद्यतां पुनः,
सा किं ततो वंशमधौ[13]-दुरोजयोः ॥१०८॥

---

१. अ. अतिदूरात् । २. अ. ब. इंद्र-सूर्य-गङ्गा । ३. अ.ब. प्रतौ **पाणितले च नीत्वा** इति पाठान्तरम् । ४. ब. दन्ताः । ५. ब. वेगेन । ६. अ. कुलटा; ब. स्वैरिणी कुलटा जातिर्या प्रियं साभिसारिका । ७. ब. ऊर्म्मिका त्वङ्गुलीयकमिति । ८. ब. वेषमकार्षीत् । ९. ब. प्रतौ '**अभिलिखन्ती**' इति पाठः । १०. ब. चञ्चद् देदीप्यमानः । ११. ब. नवे तस्मिन् किसलयं किसलं पल्लवोऽत्र तु । १२. ब. सकलं । १३. ब. धारयामास ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नितम्बिनीतुम्बकयोरिवोच्चै-र्वक्षोजयोर्मूर्धनि वेणुदानात् ।
निवेदयामाशु बभूव वीणां, पतिं मनोभावविदां वरिष्ठम् ॥१०९॥

[1]प्रसाधिकाङ्कस्थितपादपद्मं, काचिन्निजे सद्मनि सन्निविष्टा ।
अनूर्ध्ववक्त्रापि रसालशीर्षात्, कथं स्वहस्तेन फलं लुलाव ॥११०॥

सौधस्याङ्के यत्र सा सन्निविष्टा, तत्राऽधस्ताद्धस्तसादस्ति चूतः ।
हस्तेनैषाऽनूर्ध्ववक्त्राप्यखेदं, जग्राहैवं तत्फलं तस्य मूर्ध्नः ॥१११॥

काचिन्निरागस्यपि नायके स्वे, कस्मात्प्रकुप्यावनताऽऽननाऽभूत् ।
ततोऽनुतापं महदादधत्या, क्रोडे धृतोऽसावनया तदैव ॥११२॥

दृष्ट्वा स्पष्टं दशनवसने कज्जलं सा स्वभर्तु-
मत्वा कान्तं परललनया भुक्तमुक्तं चुकोप ।
पश्चान्नम्रा मणिमयगृहं प्राङ्गणे धौतनेत्रं,
वक्त्रं दृष्ट्वा स्वविगतरहस्यानुतापं चकार ॥११३॥

[2]कर्पूरं कुमुदाकरं कुमुदिनीकान्तं च कुन्दोत्करं[3],
कैलाशं [4]कतुभुग्नदीमपि दलत्काशं पयो भःपतिम् ।
डिण्डीरं जलधेश्च मन्त्रिमुकुट ! श्रीकर्मचन्द्रप्रभो !
ह्यन्तर्वाणिगणस्य लोचनपथं गच्छन्ति नैते कथम् ॥११४॥

त्वत्कीर्तिप्रसरद्युता धवलिते विश्वेऽखिलेऽपि प्रभो,
सावर्ण्यादिह संप्रमग्नवपुषः कर्पूरकुन्दादयः ।
लक्ष्यन्ते कविभिर्न चेति मिलिता दीपेऽन्यदीपप्रभा-
ऽभिन्नत्वेन न लक्ष्यते खलु यथा कोऽन्यो वृथा विस्तरः ॥११५॥

नेदं व्योमसरोवरं सुरपतेर्नैतानि भानि ध्रुवं,
चञ्चत्प्रोज्ज्वलमौक्तिकानि विलसन्नायं विधुर्दृश्यते ।
श्रीमन्त्रीश्वरकर्मचन्द्रसुयशोहंसोऽयमित्युज्ज्वल-
स्तारामौक्तिकमालिकां कवलयन्नेवं बुधैर्लक्ष्यते ॥११६॥

---

१. ब. मण्डनकर्त्री । २. ब. प्रतौ-**कर्पूरं कुमुदाकरः कुमुदिनीकान्तश्च कुन्दोत्करः, कैलाशः ऋतुभुग्नदी प्रविदलत्काशः पयो भः पतिः, डिण्डीरः-** इति पाठः । ३. ब. पुञ्जोत्करौ संहतिः । ४. ब. गङ्गा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति सुललितभावं शास्त्रमेतत्स्वकण्ठे,
प्रणयति[१] निपुणो यः सन्ततं सत्सभासु ।
अनुभवति स शोभामुल्लसन्तीमनन्तां,
न भवति परभावव्यग्रचेताः कदापि ॥११७॥

श्री**देवतिलकसूरि**र्जयति यशःपूरपूरितदिगन्तः ।
नरनरपतिमुनिमधुकरचुम्बितचरणारविन्दयुगः ॥११८॥

श्री**नर्मदाचार्य**गुरोः प्रसादात्, श्री**पद्मराज**स्य पदौ प्रणम्य ।
श्री**कर्मचन्द्रा**ह्वययाञ्चयेदं, श्री**हेमरत्नेन** कृतं च शास्त्रम् ॥११९॥

सद्वाक् शुभार्थः सुगुणः सुवृत्तो-ऽलङ्कारकान्तः शुभभावशाली ।
परोपकारप्रवणः स चाऽयं, ग्रन्थश्चिरं जयति सज्जनवज्जगत्याम्[२] ॥१२०॥

मुष्णाति चेतांसि स भूपतीनां, पुष्णाति चातुर्यमपि स्वकीयम् ।
मथ्नाति मानं ननु दुर्जनानां, यः कण्ठपीठस्थमिदं करोति ॥१२१॥

इति श्रीभावप्रदीपाभिधं शास्त्र समाप्तं । श्रीरस्तु[३] । शुभम्भवतु[४] । श्रीः ।[५]

विक्रमतो वसुवह्निक्षितिपतिवर्षे (१६३८) तथाऽऽश्विने मासि ।
विजयदशम्यामयमिति[६] विनिर्मितो **हेमरत्नेन** ॥१॥

[श्री**ज्ञानतिलकसूरि**र्जयति यशोराशिभासितदिगन्तः ।
नरनरपतिमुनिमुनिवरपूजितपादारविन्दयुगः ॥१॥
तत्पट्टे **हेमरत्ना**ह्वसूरिर्जयतु शास्त्रकृत् ।
विनिर्ध्वंसितपापौघः प्रसन्नानपङ्कजः ॥२॥][७]

---

१. ब. निर्माति । २. ब. प्रेतौ– '**ग्रन्थश्चिरं तिष्ठतु सज्जनोपि**' इति पाठः । ३-४-५. ब. नास्ति । ६. ब. प्रतौ '**विजयदशम्यामेतद् विनिर्मितं हेमरत्नेन**' इति पाठः । ७. [ ] कोष्ठकान्तर्गतौ द्वावपि श्लोकौ हेमरत्नस्वलिखितादर्शे अ.संज्ञकपुस्तके न स्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org